योग और आयुर्वेद

□ **आचार्य राजकुमार जैन** एम. ए., एच. पी. ए., दर्शनायुर्वेदाचार्य

योगदर्शन या योगशास्त्र सांख्य का ही व्यवहारिक या क्रियात्मक रूप माना जाता है, जिसमें आत्म-साक्षात्कार या परमब्रह्म की प्राप्ति के लिए प्रयोगात्मक विधियाँ निर्देशित की गई हैं। अध्यात्मकविद्या के आधारभूत सैद्धान्तिक पक्ष को क्रियात्मक रूप एवं प्रयोग के द्वारा योगशास्त्र ने जितना सुगम और सर्वजनोपयोगी बनाकर मोक्ष प्राप्ति के मार्ग को प्रशस्त किया है, उतना किसी अन्य शास्त्र ने नहीं किया। प्रारम्भिक स्थिति में योग या यौगिक क्रियाओं का सम्बन्ध शरीरमात्र या शारीरिक अंगों से रहता है। किन्तु जैसे-जैसे योगाभ्यास का विकास होता जाता है, वैसे-वैसे उसका सम्बन्ध अन्तःकरण और बुद्धि से होता जाता है। अर्थात् यौगिक क्रियाएँ मन और बुद्धि को प्रभावित कर अद्भुतरूप से उसका विकास करती हैं। मन और बुद्धि के चरमविकास के बाद योगाभ्यास आत्मा के प्रदेशों का स्पर्श कर उनके कालुष्य का निराकरण कर उन्हें निर्मलता प्रदान करता है, जिससे आत्मा में निर्मल ज्ञानज्योति उद्भासित होती है। समस्त प्रकार के शुभाशुभ कर्मों का क्षय होने के कारण समुत्पन्न अद्भुत ज्ञानालोक के द्वारा जब वह आत्मा संसार के समस्त भूत-वर्तमान-भविष्य कालीन भावों को जानने व देखने लगता है तब वह इस भौतिक शरीर का परित्याग कर मोक्ष को प्राप्त कर लेता है। यही उसका परमलक्ष्य है।

आयुर्वेद एक सम्पूर्ण जीवन-शास्त्र है, जिसमें मनुष्य की शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक प्रवृत्तियों का अपूर्व सामञ्जस्य है। आयुर्वेद यद्यपि मुख्यरूप से आरोग्यशास्त्र एवं चिकित्साशास्त्र के रूप में जाना जाता है, किन्तु वह वस्तुतः सम्पूर्ण जीवन-विज्ञानशास्त्र है, जिसमें मनुष्य का चरमलक्ष्य उसके शरीर में स्थित आत्मा को सांसारिक कर्मबन्धन से मुक्त करना प्रतिपादित है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए अनेक विज्ञ एवं प्रबुद्धजन प्रयत्नशील रहते हैं। आत्मा को मुक्तिपथ पर अग्रसर करने के लिए शरीर ही एकमात्र साधन है। शरीर के द्वारा विहित प्रत्येक कर्म और शरीर की प्रत्येक स्थिति आत्मा को प्रभावित किए बिना नहीं रहती। अतः आत्मा के मोक्षसाधन के लिए शरीर का निरोग होना नितान्त आवश्यक है। आरोग्य के बिना पारलौकिक तो क्या इहलौकिक कार्य की सिद्धि होना भी सम्भव नहीं है। इसीलिए आचार्यों ने धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष का मूल आरोग्य बतलाया है—"धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्।"

आयुर्वेदशास्त्र उसी शरीर के आरोग्य को यथावत् बनाये रखने के लिए नियम, आचरण, आहार-विहार आदि का उपदेश करता है, ताकि तदनुकूल आचरण के द्वारा मनुष्य स्वस्थ रहता हुआ अपने स्वास्थ्य की रक्षा कर सके। यदि कदाचित् मनुष्य असात्म्येन्द्रियार्थसंयोग अर्थात् मिथ्या आहार, विहार, प्रज्ञापराध अथवा काल-परिणाम आदि के कारण वेदना-

आसनस्थ तन
आत्मस्थ मन
तब हो सके
आश्वस्त जन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ग्रस्त या व्याधिपीडित हो जाता है तो उसके विकारोपशमन के लिए विभिन्न उपायों का उपदेश भी आयुर्वेदशास्त्र में किया गया है। इस प्रकार आयुर्वेद के दो मुख्य प्रयोजन हैं—स्वस्थ मनुष्यों के स्वास्थ्य की रक्षा करना और रोगी मनुष्य के रोग का उपशमन करना। महर्षि चरक ने भी इस विषय में स्पष्टतः प्रतिपादित किया है—

"प्रयोजनं चास्य स्वस्थस्य स्वास्थ्यरक्षणमातुरस्य विकारप्रशमनं च।"

—चरकसंहिता, सूत्रस्थान ३०।२६

इस प्रकार आयुर्वेदशास्त्र मनुष्य के आरोग्यसाधन में सहायक होता है, ताकि मनुष्य अपने आरोग्यवान् शरीर के द्वारा अपनी आत्मा के कल्याणार्थ मोक्ष-साधन में प्रवृत्त हो सके। इसी भांति योगशास्त्र भी अपने प्रारम्भिक-अंगों यम-नियम-आसन-प्राणायाम के द्वारा आचरण की शुद्धता, शरीर के स्वास्थ्य की रक्षा, विकारोपशमन, मानसिक द्वन्द्वों के निराकरण और बौद्धिक विकास के कार्य को प्रशस्त करता है। इन प्रारम्भिक अवस्थाओं को पार किए बिना मनुष्य आत्म-कल्याण रूप अपने चरमलक्ष्य मोक्ष को प्राप्त नहीं कर सकता।

योगशास्त्र में मोक्ष के प्रारम्भिक साधन के रूप में यम और नियम का प्रतिपादन किया गया है। यम पांच होते हैं। यम और नियम का पालन करने से मनुष्य के आचरण में शुद्धता आती है, मन में सात्विक भाव का उदय होता है और आत्मा में निर्मलता की वृद्धि होकर कलुषता का विनाश होता है। इस प्रकार शनैः शनैः मोक्ष का मार्ग प्रशस्त होता है। आयुर्वेद शास्त्र में भी आचरण सम्बन्धी कुछ इस प्रकार के नियमों का प्रतिपादन किया गया है, जो मोक्ष के साधनभूत प्रारम्भिक उपाय हैं और जिन का आचरण करने से मोक्ष का मार्ग प्रशस्त होता है।

महर्षि चरक ने उनका उल्लेख निम्न प्रकार से किया है—

सतामुपासनं सम्यगसतां परिवर्जनम्।
व्रतचर्योपवासौ च नियमाश्च पृथग्विधाः॥
धारणं धर्मशास्त्राणां विज्ञानं विजने रतिः।
विषयेष्वरतिर्मोक्षे व्यवसायः पराधृतिः॥
कर्मणामसमारम्भः कृतानां च परिक्षयः।
नैष्क्रम्यमनहंकारः संयोगे भयदर्शनम्॥
मनोबुद्धिसमाधानमर्थतत्त्वपरीक्षणम्।
तत्त्वस्मृतेरुपस्थानात सर्वमेतत् प्रवर्तते॥

—चरकसंहिता, शारीरस्थान १।१४३-१४६

सज्जनों की अच्छी प्रकार से सेवा करना, दुष्टजनों का साथ नहीं करना, चान्द्रायण आदि व्रतों का धारण व पालन करना, आत्मशुद्धि के लिए उपवास करना, अलग-अलग बतलाए हुए नियमों का पालन करना, धर्मशास्त्रों का अभ्यास, स्वाध्याय व अनुशीलन करना, विज्ञान अर्थात् आध्यात्मिक विषयों का ज्ञान प्राप्त करना या विशिष्ट निर्मल ज्ञान प्राप्त करना, निर्जन-एकान्त स्थान में निवास करना, चक्षु आदि इन्द्रियों के विषयों तथा काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि मानसिक विकार भावों में रति नहीं करना, मोक्षसाधक कर्मों में प्रवृत्ति रखना, उत्तम धैर्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धारण करना, पूर्वजन्म में उपार्जित और इस जन्म में विहित कर्मों को क्षय करने का उपाय करना, जीवन को कर्महीन बनाना अर्थात् घर या आश्रम से दूर होकर कर्मफल भोगने के लिए नए कर्म नहीं करना—निष्कर्म रहना—अहंकार रहित होना, आत्मा और शरीर का संयोग होने पर अपने को भयभीत बनाना अर्थात् यह भय रखना कि कर्मबन्धन के कारण कहीं मुझे पुनर्जन्म न लेना पड़े, मन और बुद्धि को समाधिस्थ करना, अर्थ के तत्त्वों की परीक्षा करने के बाद में उसका ग्रहण करना, ये सभी ठीक-ठीक स्मृतिज्ञान की प्राप्ति से ही प्रवृत्त होते हैं।

स्मृतिः सत्सेवनाद्यैश्च धृत्यन्तैरुपजायते ।
स्मृत्वा स्वभावं भावनां स्मरन् दुःखात् प्रमुच्यते ॥

—चरकसंहिता, शारीरस्थान १।१४७

उपर्युक्त मोक्ष के जो साधन बतलाए गए हैं उनमें "सतामुपासनम्" से लेकर "पराधृति" तक नियमों का पालन व आचरण करने से "स्मृति" उत्पन्न होती है। संसार में स्थितभाव द्रव्यों के स्वभाव का स्मरण करके तथा स्वभाव को स्मरण करते हुए दुःख से मुक्त हो जाता है। अर्थात् सांसारिक दुःखों से मुक्ति हो जाती है।

इस प्रकार चरक के अनुसार मोक्ष के साधन में 'स्मृति' विशेष महत्त्वपूर्ण है। सामान्यतः पूर्वापर के विषयों को ध्यान में रखना ही स्मृति है, यथा—"अनुभवजन्यं ज्ञानं स्मृतिः।" अथवा "अनुभूतविषयासम्प्रमोषः स्मृतिः, योगसूत्र १।११।" अर्थात् अनुभव किए हुए विषयों को नहीं भूलना ही स्मृति है। संसार में रज और तम से युक्त मन के द्वारा जो भी कार्य किये जाते हैं, वे सब दुःखदायी और सांसारिक कष्टों के कारणभूत होते हैं।

सतामुपासनम् आदि आचरण करने से स्मृति उत्पन्न होती है और विगत दुःखों के अनुभव का स्मरण करते हुए सभी कार्यों को दुःख रूप मानकर धीरे-धीरे छोड़ देने से सुखोत्पादक ईश्वर की धारणा-ध्यान-समाधि में मन लग जाता है जिससे उसे चिदानन्द रूप परम ब्रह्म की प्राप्ति होती है। अतः स्मृति भी सांसारिक कष्टों से मुक्ति करने का एक साधन है।

अष्टांगयोग का सतत अभ्यास करने से अन्ततः मोक्ष की प्राप्ति होती है—ऐसा योगाचार्यों का अभिमत है। आयुर्वेद में भी इसी तथ्य को स्वीकार किया गया है। आयुर्वेद के अनुसार मन और सेन्द्रिय (इन्द्रियों सहित) शरीर ये दोनों सभी प्रकार के कष्टों, दुःखों, रोगों और वेदनाओं का अधिष्ठान हैं। आत्मा का निवास भी इन्द्रिय और समनस्क शरीर में होता है। अतः शरीर और मन के द्वारा किये जाने वाले कर्मों का फल भी उसी आत्मा को भोगना पड़ता है। जब तक आत्मा सभी कर्मों से रहित नहीं हो जाती तब तक इस संसार से उसकी मुक्ति संभव नहीं है। मोक्ष होने पर सभी प्रकार के दुखों—रोगों वेदनाओं का अभाव हो जाता है। मोक्ष का साधन एकमात्र योग के द्वारा सम्भव है। इसीलिए महर्षि चरक ने योग को मोक्षप्रवर्तक बतलाया है। यथा—

वेदनानामधिष्ठानं मनो देहश्च सेन्द्रियः ।
केशलोमनखाग्रान्नलमद्रवगुर्णैबिना ॥
योगे मोक्षे च सर्वासां वेदनानामवर्तनम् ।
मोक्षे निवृत्तिर्निःकषा योगो मोक्षप्रवर्तकः ॥

—चरकसंहिता, शारीरस्थान २।१३६-१३७

आसनस्थ तन
आत्मस्थ मन
तब हो सके
आश्वस्त जन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

केश, लोम, नख का अग्र भाग, अन्न का मल (पुरीष), द्रवों (स्वेद-मूत्र) के गुणों को छोड़कर इन्द्रिय सहित शरीर और मन वेदनाओं का अधिष्ठान है। योग और मोक्ष में सभी वेदनाओं का नाश हो जाता है। मोक्ष में वेदनाओं की आत्यन्तिक निवृत्ति होती है। अतः योग मोक्ष का प्रवर्तक होता है।

"योगो मोक्षप्रवर्तकः" महर्षि चरक का यह वाक्य अपने आप में विशेष महत्त्व रखता है। इसके अनुसार योग मोक्ष को दिलाने वाला होता है। योगसूत्र में महर्षि पतञ्जलि ने योग का जो लक्षण बतलाया है उसके अनुसार योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः—चित्त (मन) की वृत्ति को रोकने का नाम योग है। समाधि अवस्था में जब मन की समस्त वृत्तियों का निरोध हो जाता है तब रज और तम जो मन के दोष हैं, उनका स्वयं ही मन से वियोग अर्थात् अभाव हो जाता है—इसी अवस्था को योग कहते हैं। इस योगावस्था में मनुष्य की आत्मा पूर्णतः निर्मल और विशिष्ट ज्ञानलोक से प्रकाशमान हो जाती है। गीता में भगवान श्री कृष्ण ने अर्जुन को इसी प्रकार के योग का उपदेश दिया था—

समासेनैव कौन्तेय निष्ठा ज्ञानस्य या परा।
बुद्धया विशुद्धया युक्तो धृत्यात्मानं नियम्य च॥
शुद्धासीन् विषयांस्त्यक्त्वा रागद्वेषौ व्युदस्य च।
विविक्तसेवी लघ्वासी यतवाक्कायमानसः॥
ध्यानयोगपरो नित्यं वैराग्यं समुपाश्रितः।
अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम्॥
विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते।
ब्रह्मभूतः प्रशान्तात्मा न शोचति न कांक्षति॥

—भगवद् गीता, १८

हे कौन्तेय! ज्ञान की जो उत्कृष्ट निष्ठा है उसे तू मुझ से समझ। विशुद्ध बुद्धि से युक्त स्वयं को नियन्त्रित करके शब्दादि इन्द्रियों से विषयों का परित्याग कर तथा राग-द्वेष को हटाकर एकांतवासी, मिताहारी, मन-वचन-काय को वश में करके जो नित्य ध्यानयोग में तत्पर रहता हुआ वैराग्य की ओर उन्मुख रहता है वह अहंकार बल, दर्प—मिथ्याभिमान, काम, क्रोध और परिग्रह से मुक्त होकर मोह-ममता रहित शान्त हुआ ब्रह्मपद को पाने का अधिकारी हो जाता है। ब्रह्मभूत हुआ वह प्रशान्तात्मा न तो कोई शोक (दुःख) करता है और न कुछ कामना करता है, अर्थात् उसके सुख-दुःख, इच्छा, द्वेष आदि का नाश हो जाता है।

महर्षि चरक के पूर्वोक्त वचन से एक यह बात भी स्पष्ट होती है कि मोक्ष से पूर्व की अवस्था को ही योग कहते हैं और वही योग मोक्ष का साधन है। योग के बिना मुक्ति सम्भव नहीं है। इस प्रकार मोक्ष और योग ये दोनों भिन्न-भिन्न अवस्थाएँ हैं। इसका स्पष्ट संकेत चरक के पूर्वोक्त "योगे मोक्षे च सर्वासां वेदनानामवर्तनम्" इस वाक्य से मिलता है। उनके अनुसार योग और मोक्ष दोनों ही अवस्थाओं में सभी प्रकार की वेदनाओं (दुःखों-रोगों) की आत्यन्तिक निवृत्ति हो जाती है। किन्तु योग ही मोक्ष नहीं है, अपितु योग के बाद की अन्तिम अवस्था मोक्ष है। योगावस्था में जो समस्त चित्तवृत्तियों का निरोध अथवा समस्त वेदनाओं का अवर्तन (नाश) होता है वह सशरीर अवस्था में होता है। मोक्षवस्था

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में तो इस भौतिक शरीर का भी विनाश हो जाता है अर्थात् शरीर का त्याग करने के बाद ही मोक्ष की प्राप्ति होती है। तब यह आत्मा समस्त शारीरिक बन्धनों से मुक्त हो जाती है। उसे पुनः पुनः जन्म-मरण धारण करने के लिये संसार में नहीं आना पड़ता है, यही मोक्ष है और यही इस आत्मा का चरम लक्ष्य है। आयुर्वेद के अनुसार योग मोक्षप्राप्ति में सहायक है। अतः मोक्षप्राप्ति के लिए प्रथम योग की सिद्धि होना अनिवार्य है। योगसिद्धि के बिना मोक्ष की प्राप्ति अथवा आत्मा की मुक्ति होना संभव नहीं है। इससे यह स्पष्ट है कि आयुर्वेद में योग को पर्याप्त महत्त्व दिया गया है और योग के सिद्धान्तों का वह पूर्णतः अनुमोदन करता है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि योगशास्त्र में प्रतिपादित चरमलक्ष्य को आयुर्वेद शास्त्र में भी उसी रूप में स्वीकृत किया गया है। योगशास्त्र सम्बन्धी अनेक सिद्धान्तों एवं व्यावहारिक बातों को आयुर्वेद में यथावत् रूप से ग्रहण कर लिया गया है। अतः योग और आयुर्वेद का अत्यन्त निकटतम सम्बन्ध है। जिस प्रकार योगशास्त्र में यम और नियम के द्वारा शारीरिक और मानसिक आचरण की शुद्धता पर विशेष जोर दिया गया है, उसी प्रकार आयुर्वेदशास्त्र में प्रतिपादित पूर्वोक्त "सतामुपासनं सम्यगसतां परिवर्जनम्" आदि आचरण के अतिरिक्त निम्न "आचार रसायन" भी विशेष महत्त्वपूर्ण है, जिसमें सामान्य मनुष्य को सदाचरण का अनुशीलन, सद्गुणों का ग्रहण और सत्कर्मों को करने की प्रेरणा मिलती है—

सत्यवादिनमक्रोधं निवृतं मद्यमैथुनात् ।
अहिंसकमनायासं प्रशान्त प्रियवादिनम् ॥
जपशौचपरं धीरं दाननित्यं तपस्विनम् ।
देवगोब्राह्मणाचार्यगुरुवृद्धार्चने रतम् ॥
आनृशंस्यपरं नित्यं नित्यं कारुण्यवेदिनम् ।
समजागरणस्वप्नं च नित्यं क्षीरघृताशिनम् ॥
देशकालप्रमाणज्ञं युक्तिज्ञमनहंकृतम् ।
शस्ताचारमसंकीर्णमध्यात्मप्रवणेन्द्रियम् ॥
उपासितारं वृद्धानामास्तिकानां जितात्मनाम् ।
धर्मशास्त्रपरं विद्यान्नरं नित्यं रसायनम् ॥

—चरकसंहिता, चिकित्सास्थान १।४।३०-३४

—सत्य बोलने वाले, क्रोध नहीं करने वाले, मद्य सेवन और मैथुन से दूर रहने वाले, हिंसा नहीं करने वाले, श्रम नहीं करने वाले, शान्त रहने वाले, प्रिय बोलने वाले, जप और पवित्रता में तत्पर, धैर्यवान्, नित्य दान करने वाले, तपस्वी, देव, गो, ब्राह्मण, आचार्य, गुरु और वृद्धजनों की पूजा (सेवा) में तत्पर रहने वाले, सदैव क्रूरता से दूर रहने वाले, सदैव करुणापूर्ण हृदय वाले, यथोचित समय तक जागृत रहने और यथा समय शयन करने वाले, देश, काल और प्रमाण अथवा देश और काल के प्रमाण को जानने वाले, युक्ति को जानने वाले, युक्तिपूर्वक कार्य करने वाले, अहंकार नहीं करने वाले, उत्तम या प्रशस्त आचार-विचार वाले, संकीर्णता या विकारों से रहित, अध्यात्मविद्या में प्रवण (आध्यात्मिक विषयों

आसनस्थ तन
आत्मस्थ मन
तब हो सके
आश्वस्त जन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में अपने चित्त को लगाने वाले) वृद्धजन, आस्तिक और जितात्मा पुरुषों की सेवा करने वाले, धर्मशास्त्रों के अध्ययन-चिन्तन-मनन-अनुशीलन में तत्पर रहने वाले मनुष्य को सदैव रसायन से युक्त समझना चाहिए। अर्थात् इन गुणों से युक्त मनुष्य यदि रसायन का सेवन नहीं भी करता है तो भी रसायन के सभी गुण उसे प्राप्त होते हैं।

इस प्रकार यहाँ स्वस्थ पुरुषों के लिए आचरण की श्रेष्ठता प्रतिपादित की गई है। अतः मनुष्य को उत्तम आचार-विचारवान् बनने का प्रयत्न करना चाहिए। उपर्युक्त आचार-विचार का पालन करने वाले मनुष्य सामान्य लोगों की अपेक्षा श्रेष्ठ और उन्नत आत्मा वाले होते हैं, अतः वे रसायन के गुणों को बिना रसायन-सेवन के सहज ही प्राप्त कर लेते हैं। योगशास्त्र में जो यम और नियम बतलाए गए हैं वे भी इन आचार-विचार से भिन्न नहीं हैं। उनका उद्देश्य भी शारीरिक आचरण की शुद्धि, मानसिक दोषों का परिहार और आध्यात्मिक उन्नति प्राप्त करना है। अतः दोनों का लक्ष्य साधन एक है।

योगशास्त्र में यम, नियम के पश्चात् 'आसन' नामक तृतीय अंग का विवेचन किया गया है। आसन के विषय में कहा गया है कि यह सम्पूर्ण योग का मूल आधार है। आसन की सिद्धि के बिना साधक की आगे गति नहीं है। आसन का प्रभाव साधक के शरीर, मन, इन्द्रियों और आत्मा पर संयुक्त रूप से पड़ता है, जिससे साधना के लिए आधारभूत सुदृढ़ भूमि का निर्माण होता है। तात्पर्य यह है कि आसन के द्वारा शरीर और मन में इतनी सहृदयता आ जाती है कि उससे साधक की साधना में शारीरिक या मानसिक व्यवधान नहीं आ पाता है। शरीर पर आसन का जो प्रभाव पड़ता है उससे शरीर स्वस्थ एवं निरोग बना रहता है। शरीर के सम्पूर्ण अवयव-अंगोपांग और उनकी सभी प्रकार की क्रियाएँ नियन्त्रित होती हैं, जिससे स्वास्थ्य की रक्षा तो होती ही है, अनेक प्रकार के रोगों का शमन भी होता है। अनेक आसन तो ऐसे हैं जो रोग या रोग की अवस्था विशेष में अत्यन्त लाभकारी होते हैं। एक-एक आसन कई-कई रोगों में लाभकारी पाया जाता है। अतः रोगोपशमन या रोगों की चिकित्सा के लिए योग अपूर्व साधन है। इस प्रकार योगासनों के द्वारा जहाँ स्वस्थ मनुष्यों के स्वास्थ्य का अनुवर्तन होता है वहाँ विकासग्रस्त अवस्था में रोगों का उपशमन भी होता है। आयुर्वेद का मूल प्रयोजन भी यही है—"**प्रयोजनं चास्य स्वस्थस्य स्वास्थ्यरक्षणमातुरस्य विकारप्रशमनं च।**" अर्थात् इस आयुर्वेदशास्त्र का प्रयोजन स्वस्थ मनुष्यों के स्वास्थ्य की रक्षा करना और रोगी मनुष्यों के रोगों का शमन करना।

स्वस्थ मनुष्यों के स्वास्थ्य की रक्षा के लिए आयुर्वेद में स्वस्थवृत्त और सद्वृत्त का विधान बतलाया गया है। इस दृष्टि से दिनचर्या, निशाचर्या और ऋतुचर्या का वर्णन विशेष महत्त्वपूर्ण है। दिनचर्या के अन्तर्गत प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्त में जाग्रत होने से लेकर सायंकाल तक के समस्त दैनिक क्रिया-कलापों का उल्लेख है। साथ ही उनके गुणधर्म भी बतलाए गए हैं। प्रातःकालीन कार्यों में अभ्यंग, उद्वर्तन, स्नान आदि क्रियाओं के साथ-साथ स्वशक्त्य-नुसार व्यायाम करने का भी निर्देश दिया गया है। व्यायाम के द्वारा शरीर को स्वस्थ सुन्दर एवं सुगठित बनाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त व्यायाम से शरीर के आभ्यन्तरिक अवयव और उनकी क्रियाएँ भी प्रभावित होती हैं, जिससे स्वास्थ्य रक्षा तो होती ही है, अनेक विकारों-रोगों का उपशमन भी होता है। अतः जो कार्य योगासनों के द्वारा सम्पादित होता है, बहुत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुछ अंशों में वही कार्य व्यायाम के द्वारा भी सम्पन्न होता है। यद्यपि योगासनों और व्यायाम में तुलना नहीं की जा सकती और न ही व्यायाम की श्रेणी में योगासनों को रखा जा सकता है। क्योंकि योगाभ्यास व्यायाम की अपेक्षा कहीं अधिक उत्कृष्ट माने गए हैं, तथापि स्वास्थ्यरक्षा की दृष्टि से दोनों को समान मानने में कोई आपत्ति नहीं है। यद्यपि आयुर्वेद में योगासनों का कहीं स्पष्ट उल्लेख नहीं है, किन्तु इसका अभिप्राय यह नहीं है कि वे अभ्यसनीय या आचरणीय नहीं हैं। सम्भवतः कष्टसाध्य होने अथवा उनकी दुरूहता के कारण उन्हें आयुर्वेद में परिगणित नहीं किया गया है, किन्तु व्यायाम के माध्यम से या व्यायाम के रूप में वे अभ्यसनीय हो सकते हैं। इसके अतिरिक्त आयुर्वेद में जो स्वस्थवृत्त और सद्वृत्त वर्णित है, यह सर्वथा योगासनों के अनुकूल है। योगासनों के द्वारा जो सुपरिणाम स्वास्थ्य-अनुवर्तन और विकाराभिनिवृत्ति के रूप में प्राप्त किए जाते हैं वे भी सर्वथा आयुर्वेद के अनुकूल हैं। इस दृष्टि से योग और आयुर्वेद में निकटता होना स्वाभाविक है।

योगासनों के अभ्यास में जब साधक स्थिरता और सुदृढ़ स्थिति को प्राप्त कर लेता है तो वह आगामी योगांग "प्राणायाम" के अभ्यास में तत्पर होता है। प्राणायाम वस्तुतः प्राण-वायु के निरोध की एक ऐसी विशिष्ट प्रक्रिया है जिसके अभ्यास की सफलता होने पर मनुष्य को सुदीर्घ आयु प्राप्त होती है। आयुर्वेद में भी दीर्घायु की प्राप्ति के लिए अनेक विधि-विधान और उपाय वर्णित हैं। आयुर्वेद में केवल दीर्घायु की प्राप्ति के लिए ही उपायों का उल्लेख नहीं है, अपितु सुखायु और हितायु का भी विवेचन किया गया है। साथ ही असुखायु और अहितायु का ज्ञान और उससे बचने का उपाय भी प्रतिपादित है।

प्राणायाम में आयु की दीर्घता वायु के निरोध पर निर्भर है। मन की चंचलता और निश्चलता भी वायु के निरोध पर निर्भर है। इस प्रकार सम्पूर्ण प्राणायाम ही वायु पर आधारित होने से वायु को विशेष महत्त्व दिया गया है, जैसा कि उपनिषद् के निम्न उद्धरण से स्पष्ट है—

चले वाते चलं चित्तं निश्चले निश्चलं भवेत्।
योगी स्थाणुत्वमाप्नोति ततो वायुं निरोधयेत्॥

—वायु के चलायमान होने पर मन भी चंचल रहता है और वायु के निश्चल रहने पर मन भी निश्चल हो जाता है, तब योगी स्थाणुत्व (स्थिरता) को प्राप्त करता है। अतः वायु का निरोध (वश में) करना चाहिए।

यहाँ वायु का महत्त्व बतलाया गया है। वायु के निरोध के बिना प्राणायाम की सिद्धि सम्भव नहीं है। आयुर्वेद में भी वायु को विशेष महत्त्व दिया गया है। शरीर में सम्पन्न होने वाली सम्पूर्ण क्रियाओं, इन्द्रियों और मन का नियन्ता व प्रणेता वायु को ही माना गया है। शरीर की स्वस्थावस्था में कारणभूत दोषसाम्य और विकारावस्था में कारणभूत दोषवैषम्य के अन्तर्गत वायु की ही प्रधानता है। वायु के बिना अन्य दोनों पित्त और कफ दोष निष्क्रिय रहते हैं। उनमें कोई गति नहीं होती और न ही उसमें कोई क्रिया होती है। जैसा कि प्रतिपादित है—

पित्तं पंगु कफः पंगु पंगवो मलधातवः।
वायुना यत्र नीयन्ते तत्र गच्छन्ति मेघवत्॥

आत्मस्थ तन
आत्मस्थ मन
तब हो सके
आश्वस्त जन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

—पित्त पंगु (गतिशील नहीं) है, कफ पंगु है, मल (स्वेद-मूत्र-पुरीष) और धातुएँ (रस-रक्त-मांस-मेद-अस्थि-मज्जा-शुक्र) भी पंगु हैं। ये दोष-धातु-मल वायु के द्वारा जहाँ ले जाए जाते हैं वहाँ बादल के समान चले जाते हैं। तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार वायु के द्वारा बादल गतिशील होते हैं उसी प्रकार शरीर में दोष-धातु-मल भी वायु के द्वारा गतिशील रहते हैं।

इसी प्रकार और भी अनेक उद्धरण वायु की प्रधानता और महत्त्व के विषय में आयुर्वेदशास्त्र में प्राप्त होते हैं। शरीर को स्वस्थ और निरोग बनाये रखने के लिए वायु की साम्यावस्था अत्यन्त आवश्यक है। उसी प्रकार योगशास्त्र में प्राणायाम की दृष्टि से वायु का विशेष महत्त्व बतलाया गया है।

योगशास्त्र में विशेषतः हठयोग में प्राणायाम से पूर्व षट्कर्म द्वारा शरीर का शोधन करना अत्यन्त आवश्यक बतलाया गया है। नेति, धौति, बस्ति, नौली, कपालभांति और त्राटक, इन यौगिक षट्कर्मों के द्वारा योगाचार्य कफादि दोषों को दूर करने का निर्देश देते हैं, ताकि इन कर्मों से शरीर की शुद्धि होकर शरीर प्राणायाम के अभ्यास के योग्य बन सके। आयुर्वेदशास्त्र में शरीर का शोधन करने के लिए "पंचकर्म" बतलाए गए हैं। जैसे वमन, विरेचन, बस्ति, शिरोविरेचन और रक्तमोक्षण। इन कर्मों से कफादि दोष शरीर के बाहर निकल जाते हैं और शरीर शुद्ध हो जाता है, जिससे वह स्वस्थ और निरोग बना रहता है। शरीर का शोधन रोगोपशन के लिए चिकित्सा के रूप में होता है, जिससे अनेक रोग समूल नष्ट हो जाते हैं। आयुर्वेदोक्त पंचकर्म के द्वारा दोषानुसार निम्न प्रकार से शुद्धि होती है—वमन से कफ दोष की, विरेचन से पित्त दोष की, बस्ति से वायु दोष की, शिरोविरेचन से सिर में स्थित दोष की और रक्तमोक्षण से अशुद्ध रक्त का निर्हरण होता है। इस प्रकार पंचकर्म से दोषों का निर्हरण होकर शरीर पूर्ण रूपेण शुद्ध हो जाता है। योगशास्त्र में जो षट्कर्म बतलाए गए हैं उनके द्वारा शरीर की शुद्धि के साथ-साथ अनेक रोगों का शमन भी होता है। जैसे नेतिकर्म के विषय में कहा गया है—

कपालशोधिनी चैव दिव्यदृष्टिप्रदायनी।
जत्रूर्ध्वजातरोगौघं नेतिराशु निहंति च ॥

—हठयोग प्रदीपिका २-३०

—नेतिकर्म कपाल का शोधन करने वाला, सिर में स्थित कफादि दोषों को दूर करने वाला और दिव्यदृष्टि प्रदान करने वाला होता है। वह उर्ध्वजत्रुगत (गले से ऊपर अर्थात् शिर में होने वाले) रोग समूह को शीघ्र नष्ट करता है।

धौतिकर्म के द्वारा निम्न रोगों का नाश होता है—

कासश्वासप्लीहकुष्ठं कफरोगाश्च विंशतिः।
धौतिकर्म प्रभावेण प्रयान्त्येव न संशयः ॥

—हठयोग प्रदीपिका २-२५

धौतिकर्म के प्रभाव से कास, श्वास, प्लीहा सम्बन्धी विकार, कुष्ठरोग और बीस प्रकार के कफ रोगों का विनाश होता है—इसमें कोई संदेह नहीं है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुल्मप्लीहोदरं चापि वातपित्तकफोद्भवाः ।
वस्तिकर्मप्रभावेण क्षीयन्ते सकलामयाः ।।

—हठयोग प्रदीपिका २-२७

—बस्तिकर्म के प्रभाव से गुल्म, प्लीहा सम्बन्धी रोग, उदर रोग तथा वात, पित्त, कफसे उत्पन्न होने वाले सभी रोग नष्ट हो जाते हैं ।

इसी प्रकार त्राटककर्म के अभ्यास से सभी प्रकार के नेत्ररोग निर्मूल होकर नेत्रों की ज्योति बढ़ती है । नौतिक्रिया के अभ्यास से अग्नि विकृति दूर होकर पाचनक्रिया एवं पाचन संस्थान सुव्यवस्थित रहता है । इससे होने वाले लाभों का वर्णन निम्न प्रकार से किया गया है ।

मन्दाग्निसंदीनपाचनादिसंधापिकानन्दकरी सदैव ।
अशेषदोषामयशोषिणी च हठक्रियामौलिरियं च नौलिः ।।

—हठयोग प्रदीपिका २-३४

—हठक्रिया में शिरोमणि यह नौलि क्रिया मन्दाग्नि को दूर कर जठराग्नि को प्रदीप्त करने वाली, पाचनादि क्रियाओं को ठीक रखने वाली, सदा आनन्द देने वाली, सभी दोषों और रोगों को दूर करने वाली है ।

कपालभांति कर्म के द्वारा सिर, पार्श्व और वक्ष प्रदेश में संचित श्लेष्मा का क्षय या निर्गम होता है । इस प्रकार ये षट्कर्म मल और दोषों को बाहर निकाल कर शरीर का शोधन कर रोगों का नाश करने वाले होते हैं ।

यह सम्पूर्ण विषय आयुर्वेदीय चिकित्साशास्त्र से सम्बन्धित हैं । अतः निस्सन्देह रूप से यह कहा जा सकता है कि योगशास्त्र बहुत कुछ रूप में आयुर्वेद का पूरक होने के कारण उसके अत्यन्त निकट है । योगशास्त्र में प्रतिपादित स्वास्थ्यरक्षा और रोगनाशक सम्बन्धी सिद्धान्त पूर्णतः वैज्ञानिक पद्धति पर आधारित तथा आयुर्वेदीय दृष्टिकोण के सर्वथा अनुकूल हैं । यौगिक षट्कर्म तथा अन्य यौगिक क्रियाओं का प्रभाव सम्पूर्ण शरीर, मन और आत्मा पर पड़ता है । आयुर्वेदीय स्वस्थवृत्त, सद्वृत्त एवं चिकित्सा भी शरीर, मन और आत्मा को पूर्णतः प्रभावित करते हैं । आपाततः दोनों का अन्तिम लक्ष्य भी लगभग समान ही है । अतः दोनों शास्त्र भिन्न होते हुए भी एक दूसरे के अत्यन्त निकट हैं ।

भारतीय चिकित्सा केन्द्रीय परिषद्
१ ई/६, स्वामी रामतीर्थनगर,
नई दिल्ली—११००५५

□□

आसनस्थ तन
आत्मस्थ मन
तब हो सके
आश्वस्त जन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org